5

कानून और सामाजिक नियंत्रण के नियामक कार्य

इस अध्याय में हम विभिन्न प्रकार के सामान्य नियमों तथा मानकों से परिचित होंगे, जो समाज को एक क्रम में रखने में सहायक होते हैं। आपको अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे। ऐसे नियम और मानक, समाज को एक शृंखला में बांधे रखते हैं। उदाहरण के लिए, यदि हम क्रिकेट, फुटबॉल, हॉकी, टेबल टेनिस जैसे खेलों की बात करें तो देखेंगे कि इन खेलों के कुछ नीति-नियम हैं, जिनका पालन हर खिलाड़ी करता है, वैसे ही आपके परिवार या स्कूल में अपने बड़े या छोटों से व्यवहार करने के कुछ नियम होते हैं, जैसे-समय पर स्कूल आना, कक्षा में उपस्थित होना। वृहत स्तर पर कहें तो विवाह, दत्तक- ग्रहण एवं उत्तराधिकार तथा वाणिज्य-व्यापार के भी नियम हैं। ये नियम या कानून नैतिकता, रीति-रिवाजों, जनमत आदि पर आधारित हैं। आधुनिक युग में लोगों के बीच संबंध स्थापन के क्षेत्र में कानून महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। हालांकि ज्यादातर कानून, नैतिकता, रीति-रिवाजों और जनमत आदि पर आधारित है। जो कानून इन पर आधारित नहीं है, जनता के प्रतिरोध के शिकार है और ज्यादा देर तक नहीं टिकते।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् आप-

- 'मानकों' की परिभाषा कर पाएंगे,
- कानूनी 'मानकों' और अन्य मानकों में भेद स्पष्ट कर पाएंगे।
- सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने में 'मानकों' की भूमिका का मूल्यांकन कर पाएंगे,
- सामाजिक नियंत्रण के संदर्भ में कानून की भूमिका को समझ पाएंगे,
- वैकल्पिक विवाद निवारण या समाधान को परिभाषित कर पाएंगे,
- वैकल्पिक विवाद निवारण के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर पाएंगे,
- विवादों को निपटाने में लोक अदालतों की भूमिका को समझ पाएंगे एवं

- समाज में सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन लाने में उच्चतम न्यायालय की भूमिका का उल्लेख कर पाएंगे।

5.1 मानकों की धारणा या अर्थ

सामाजिक मानक समाज की वे धारणाएं हैं जो यह बताती हैं कि विशेष संदर्भ में सदस्यों का व्यवहार कैसा होना चाहिए। जिसमें किसी विशेष संदर्भ में सदस्यों का आपसी व्यवहार भी है। समाजशास्त्रियों ने मानकों को अनौपचारिक समझौता माना है, जो समाज के व्यवहार को नियन्त्रित करता है।

सहज रूप से कहें तो 'मानक' शब्द समाज द्वारा अपनाए गए एक आदर्श व्यवहार को व्यक्त करता है। ये 'मानक' सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में आवश्यक माने जाते है। मानक बनाने वाली अनेक संस्थाएं हैं। उनमें कुछ धर्म, नैतिकता के मापदण्ड, रीति–रिवाज तथा कानून है।

पुरातन काल में समाज को परिचालित करने में धर्म महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। धर्म और कानून में कोई भेद नहीं समझा जाता था। बाद में 'मानकों' को बनाने में बहुत सारी संस्थाएं अस्तित्व में आई।

हर समाज कुछ मात्रा में अपने नागरिकों पर सामाजिक नियंत्रण बनाए रखता है। वे औपचारिक और अनौपचारिक रूप में व्यवहार पर नजर रखते हैं और नियंत्रित करते हैं। बड़े स्तर के समाजों में कानून, अदालत, पुलिस ज्यादातर नजर आने वाले तंत्र हैं। हालांकि कानून सामाजिक नियंत्रण का केवल एक पहलू है और साधारणतः सामान्य प्रभावी तत्व है। छोटे स्तर के समाज, कानूनी संस्थाओं के झमेलों में न पड़कर खुद सामाजिक नियंत्रण बनाए रखते हैं, जिससे हम सभी परिचित हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वे विधि के अंतर्गत नहीं आते।

सामाजिक प्रक्रिया के सामाजिक नियंत्रण को समझने के लिए पहले तो समाज आधारित मानकों को समझना है। समाज में ये सब सामान्य विचार का सकेंद्रण और संभावित व्यवहार है। समयानुसार मानकों में परिवर्तन होता है। पारंपरिक समाज में मानकों में बहुत ही धीरे परिवर्तन लक्षित होता है। वृहत एवं बहु–जातीय समाजों में मानकों में शीघ्रता से परिवर्तन होता है।

प्रायः समाज के मानक बदलतें रहते हैं। किन्तु उनसे सम्बंधित कानूनों का इनके अनुरूप बनने में समय लगता है। समाज पर प्रभावी नियंत्रण कानूनों, पुलिस तथा जेलों द्वारा नहीं रखा जाता अपितु समाज के सदस्यों द्वारा नैतिक आचार संहिता का बोध होने और मानने से होता है।

पाठगन प्रश्न 5.1

1. 'मानकों' को परिभाषित करें?
2. दो 'मानकों' का उल्लेख करें, जो सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करते हैं।

5.2 सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में 'मानकों' की भूमिका

सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में 'मानकों' की महत्वपूर्ण भूमिका है। हम देखेंगे कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमारे व्यवहार को नियंत्रण करने के लिए कुछ मानक होते हैं। उदाहरण के

तौर पर, व्यक्तियों के बीच आपसी रिश्ता बनाए रखने के लिए कुछ नैतिक मानक या मापदंड हैं। जैसे- झूठ न बोलना, मुश्किलों में एक-दूसरे की मदद करना आदि। वैसे ही, विवाह, दत्तक-ग्रहण आदि के संबंध में हर समाज के अपने-अपने सामाजिक मानक होते हैं। वैसे ही किसी विशेष व्यापार या कारोबार को परिचालित करने के लिए अपनी-अपनी पद्धति है। इसके अलावा कानून ने भी कुछ मानक बनाए हैं। आधुनिक युग में मानक बनाने के क्षेत्र में कानून की भूमिका दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। हालांकि आज यह देख सकते हैं कि कानून संबंधित ज्यादातर मानक समाज के विभिन्न क्षेत्रों से जैसे- सामाजिक, नैतिक, व्यापार, व्यवसाय और कारोबार आदि के व्यवहार एवं मानदण्डों पर आधारित है। यह देखा गया है कि ऊपर उल्लिखित मानकों पर आधारित कानूनी मानकों को ज्यादातर व्यवहार में समाज द्वारा अपनाया जाता है। कभी-कभी कानून समाज में प्रचालित इन नैतिक-सामाजिक मानकों में हस्तक्षेप करके कुछ नये मानक बनाता है। दहेज-प्रथा, अछूत और सती-प्रथा इसके उदाहरण हैं।

पाठगत प्रश्न 5.2

सही/गलत लिखे

1. सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने में 'मानकों' की महत्वपूर्ण भूमिका है (सही/ गलत)

2. कानून भी 'मानक' बनाता है। (सही/ गलत)

3. आधुनिक युग में 'मानक' बनाने में कानून की भूमिका दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। (सही/ गलत)

5.3 सामाजिक नियंत्रण में कानून की भूमिका

संविधान का सामाजिक-आर्थिक लक्ष्य

भारत की आजादी ने एक नए युग की शुरूआत की। संविधान ने कुछ लक्ष्य निर्धारित किये हैं और बुनियादी सिद्धान्तों को संविधान में शामिल किया गया जिन्हें प्राप्त करने के लिए राष्ट्र प्रतिबद्ध है। सामाजिक-आर्थिक लक्ष्य और हमारे राष्ट्र का मूलभूत आस्थाओं को संविधान में सम्मिलित किया गया है। इसने कानून को यह दायित्व या कार्य सोंपा है कि वह वर्तमान कानून-प्रणाली में समय अनुसार परिवर्तन लाएं जो लोगों की आवश्यकताओं, कानून के ऐसे विकसित होते सिद्धान्तों, विधायी सूत्रीकरण तथा सांविधव्य संस्थाओं जो हमारे समय की आवश्यकताओं के अनुकूल हो तथा संविधान के लक्ष्यों को मूर्तिरूप दे सके। इस प्रकार संविधान द्वारा तय लक्ष्य सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों को आवश्यक बनाते हैं।

आजादी के संघर्ष के लक्ष्यों की पुन: प्राप्ती, हमारी जातीय पहचान का बोध, बुनयादी विश्वास, हमारा संघर्ष करने का जोश, हमारे दृढ़ संकल्प, जो पूर्णतया, प्रामाणिक, अधीर तथा साहसिक हैं, ही सामाजिक परिवर्तनों के पीछे प्रेरक शक्ति है। यह प्रबल बोध कि हम आजाद हैं और सामाजिक

न्याय के प्रति प्रतिबद्ध हैं, आज भी हमारी न्याय-प्रणाली को चला रहा है। राजनैतिक आजादी की घोषणा हमारे 'राष्ट्र' को मूर्त्त रूप देने जैसा है, आर्थिक आजादी के लिए आत्म-अभिव्यक्ति के लिए संविधान से लेकर व्यवहार में कानून तक अब भी संघर्ष चल रहा है।

भारतीय विधि-वेताओं से एक ऐसे शक्तिशाली सुनियोजित तथा व्यापक कानूनी विरोध, जो पांच-सितारा वैभव या सम्पन्नता, जनता की गरीबी तथा सामाजिक असमर्थता के विरूद्ध लड़ाई लड़ सके, की अपेक्षा है।

सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन एवं भू-सम्पति सम्बन्धित कानून में विधायी सुधार

संविधान में किए गए मूल लक्ष्य को देखते हुए सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाने में कानूनी प्रक्रिया की शुरूआत हुई। देश की अर्थनीति मूलतः कृषि पर आधारित है और यह सामाजिक ढांचा को परिचालित करती है। कृषिपयोगी जमीन पर बढ़ता दबाव, भू-स्वामित्व की एकाग्रता, कृषकों की दयनीय आर्थिक स्थिति और उनका शोषण, उत्पादों में वृद्धि की जरूरी आवश्यकता, कृषि प्रणालियों में आधुनिकीकरण और ब्याज के विविध स्रोत-ये सभी काश्तकारी और भू-सुधार कानून पर संचयी प्रभाव है। इसीलिए आजाद भारत का सारा ध्यान समय की जरूरतों को देखते हुए भूमि-कानूनों की पूरी तरह से जाँच को प्राथमिकता देना था। फलस्वरूप, हर राज्य में भू-सुधार कानून बनाए गए। भूमि की उच्चतम सीमा निश्चित की गई, भू-कर्जा माफ किया गया, कृषि के लिए आवश्यक कर्जा उपलब्ध कराया गया, कृषि की उन्नति के लिए तरह-तरह की परियोजनाएं, कार्यक्रमों और योजनाएं शुरू की गई। गांव की उन्नति के लिए ग्राम पंचायत शुरू की गई। साथ ही शिक्षा अभियान, कृषकों की हितों की सुरक्षा और घरेलू उद्यमों को बढ़ावा दिया गया।

5.3.1 श्रम नियम या मजदूरों से सम्बन्धित कानून

आजाद भारत में मजदूरों के हकों की सुरक्षा के लिए पहले के नियमों में परिवर्तन किए गए। प्रथम विश्वयुद्ध के समय इस तरह की कोई श्रम कानून नहीं था। 1919 ई. से 1939 ई. के बीच दूसरे विश्वयुद्ध के समय मजदूरों के हकों के लिए नियम बनाए गए। कुछ कानून दूसरे विश्व युद्ध के बाद और कुछ देश द्वारा राजनैतिक आजादी प्राप्त करने के बाद बनाए गए। किन्तु सामाजिक-आर्थिक सुधारों को देखते हुए यह पर्याप्त नहीं था। आजादी के बाद जो नए श्रम कानून बनाए गए, उसमें मजदूरों की सामाजिक और आर्थिक दशा सुधारने पर ध्यान दिया गया। नये श्रम कानून मुख्यतया श्रमिक वर्ग की भलाई के लिए बनाए गए हैं। जिनके द्वारा औद्योगिक शांति लाकर उत्पादन की गति बढ़ा कर देश में समृद्धि लाना है।

मुख्य न्यायाधीश गजेंद्रगडकर ने श्रम कानूनों को नयी समाजिक आवश्यकताओं के अनुसार ढालने की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने लिखाः

इस विषय में औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें मजदूरी, भत्ता, बोनस समापन आदि के लिए नियम बनाए गए। हड़ताल, तालाबंदी के समय वेतन देने की व्यवस्था की गई। इसकी खातिर अनेक कानून बनाए गए, जैसे कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, राज्य कर्मचारी बीमा अधिनियम 1948, औद्योगिक विवाद (बैंकिंग और बीमा कंपनी) अधिनियम 1949, प्रशिक्षु अधिनियम 1961, मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 इत्यादि। भारत में

श्रम-विधान जब उस सामाजिक एवं आर्थिक विधान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। वे वृहत्त उत्तरदायित्व जो सरकार ने समुदाय के कमजोर वर्गों के संरक्षण के लिए अपने ऊपर ली हैं।

5.3.2 परिवार-कानून

आजादी से पहले अंग्रेज सरकार ने इस कानून की अवहेलना की थी। सामाजिक सुधार, प्रगतिशील अर्थनीति में इस कानून पर जोर देना जरूरी था। कुछ कट्टरपंथियों के विरोधात्मक आचरण से इस नियम को कुछ कदमों तक लागू किया गया। फिर जनता से सलाह-मशविरा लेकर इस कानून को पूर्ण रूप से लागू किया गया। इसके तहत चार अधिनियम लागू किये गये- (क) हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (ख) हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, (ग) हिंदू दत्तक-ग्रहण एवं भरण-पोषण अधिनियम 1956, (घ) हिंदू अवयस्कता और अभिभावकता अधिनियम 1956। हिंदू स्वतंत्र विवाह अधिनियम 1954 में बदलती हुई समाज के साथ-साथ कई बदलाव किए गए। दहेज निषेध अधिनियम 1961 का संशोधन 1986 में किया गया और फैमिली कोर्ट अधिनियम 1984 में लागू किया गया।

सामाजिक बुराइयों और नि:शक्तता का उन्मूलन

इस समय सामाजिक कुसंस्कार और नि:शक्तता का उन्मूलन करने के लिए अनेक तरह के नियम बनाए गए। उनमें से प्रमुख हैं-

उत्तर प्रदेश सामाजिक नि:शक्तता उन्मूलन अधिनियम 1947, पश्चिम बंगाल हिंदू सामाजिक कुसंस्कार अधिनियम 1948, अछूत अपराध अधिनियम 1955 जिसे बाद में 'नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम' नाम दिया गया, देवदासी प्रथा का प्रचलन, बलि प्रथा और समाज के कुछ वर्गों को मंदिर में प्रवेश निषेध आदि कुछ कुसंस्कार मद्रास बलि प्रथा अधिनियम 1950, मद्रास देवदासी प्रथा उन्मूलन 1947, मद्रास मंदिर प्रवेश अधिनियम 1947, बॉम्बे हिंदू स्थानों में सार्वजनिक पूजा अधिनियम 1956 और इस तरह के अनेक अधिनियम सामाजिक सुधार और हिंदू सामाजिक क्रम के पुन: निर्माण के लिए बनाए गए।

5.3.3 विशिष्ट आवश्यकताओं वाले व्यक्ति

भारत के संसद ने व्यक्तियों की विकलांगता के लिए चार विधेयकों को पारित किया जैसे कि

(क) विशिष्ट आवश्यकताओं वाले व्यक्ति (समानाधिकार, अधिकारों की सुरक्षा एवं पूर्ण सहभागिता) अधिनियम 1995, जो शिक्षा, रोजगार, प्रतिबंधहीन परिवेश, सामाजिक सुरक्षा आदि का प्रावधान करता है।

(ख) ऑर्टिज्म, 'सेरेब्रल पाल्सी' एवं मानसिक मंदता से ग्रस्त व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय न्यास तथा बहु-विकलांगता अधिनियम 1999 में इन चार वर्गों के कानूनी संरक्षण के लिए तथा जितना संभव हो सके उतना स्वतंत्र रहने के लिए सक्षम पर्यावरण के सृजन करने का प्रावधान है।

(ग) भारतीय परिषद अधिनियम 1992, पुनर्वास सेवा प्रदान करने के लिए जनशक्ति के विकास संबंधित है।

मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1987, मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकारियों, मनोरोग स्वास्थ्य केंद्र और नर्सिंग होम में एडमिट होने, चिकित्सा होने से संबंधित है।

5.3.4 उच्चतम न्यायालय और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन

उच्चतम न्यायालय, जो न्याय के उच्चतम शिखर पर है, जो मूल अधिकारों का संरक्षक, गारंटीकर्ता और संविधान का व्याख्याकार है, उसका देश के नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सुरक्षा प्रदान करने का सांविधानिक कर्तव्य है। संविधान न केवल एक कानून, बल्कि राजनीतिक दस्तावेज है। इसीलिए, महत्वपूर्ण सांविधानिक सवालों की व्याख्या नीतियों के सूत्रीकरण के लिए जरूरी है। यहां पर न्यायिक सक्रियता बहुत जरूरी है। न्यायिक सक्रियता के साथ उच्चतम न्यायालय आगे के सामाजिक-आर्थिक सुधारों के लिए, कानून की व्याख्या करता है। सच तो यह है कि उच्चतम न्यायालय ने हाल के वर्षों में सामाजिक आर्थिक सुधार के लिए अनेक कदम उठाए हैं। इस अध्याय में हर परिवर्तन का उल्लेख करना संभव नहीं। लेकिन कुछ महत्वपूर्ण बदलावों का यहां उल्लेख किया गया है।

संविधान की व्याख्या

भारतीयों के मूल अधिकार को सुरक्षित रखने के उद्‌देश्य हेतु संविधान के अनुच्छेद 12 में 'अन्य प्राधिकार' के अर्थ की व्याख्या की गई है और इसकी परिसीमा भी विस्तृत की गई है जिससे कि अधिक-से-अधिक संस्थाएं इसके दायरे में आ सकें और उन्हें मूल अधिकारों के उल्लंघन से रोका जा सके। नागरिक स्वतंत्रता के मामलें में उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) के विचार क्रमश: (धीरे-धीरे) व्यापक होते गये हैं। मेनका गांधी बनाम भारत सरकार के मामले के बाद एक नयी परम्परा उभर कर सामने आयी है। उसके बाद कोर्ट ने मूल अधिकारों एवं प्राकृतिक न्याय के दायरे को न्यायिक सक्रियता के द्वारा अनेक रचनात्मक विवेचनों के माध्यम से विस्तृत करना शुरू किया। इस प्रक्रिया में जजों ने संविधान के कई भागों की फिर से व्याख्या की। उदाहरण के लिए, जीने का अधिकार एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार, जो कि अनुच्छेद-21 में वर्णित है, को एक दोहरी प्रक्रिया खंड में 'वास्तविक ('defacto') एवं 'विधि सम्मत' ('de-jure') परिवर्तित कर दिया गया जो कि संविधान निर्माताओं के उद्देश्यों के प्रतिकूल था। इस अधिकार ने शीघ्र ही विस्तृत होकर अन्य तरह के जेल न्यायशास्त्र को जन्म दिया है जिसने अनुच्छेद-21 की रचना कर कैदियों को नए अधिकार दिये हैं। इस नये जेल न्यायशास्त्र में, त्वरित सुनवाई का अधिकार, मुफ्त कानूनी सहायता का अधिकार, मानव गरिमा का अधिकार, यातना के विरूद्ध अधिकार मूल अधिकारों के कुछ घटक बनाए गए हैं।

राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों को कोर्ट के द्वारा अधिक-से-अधिक महत्व दिया गया है। कोर्ट की देख-रेख में यह सुनिश्चित किया गया है कि नागरिक स्वच्छता की व्यवस्थाओं के मसले पर राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों एवं नगरपालिका के बीच कोई टकराव ना हो।

'मेसर्स कस्तूरीलाल बनाम जम्मू-कश्मीर सरकार' मामले में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियाँ (अवलोकन) समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। इसके अनुसार सरकार के द्वारा की गई प्रत्येक कारवाई जनहित में होनी चाहिए।

सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न फैसले इस देश में सामाजिक न्याय की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं।

जनहित याचिका (PIL)

जनहित याचिका का आरंभ सुप्रीम कोर्ट की तरफ से शुरू की गई एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसके महत्व एवं बढ़ते हुए दायरे को देखते हुए इसकी चर्चा अलग से की गई है।

जनहित कानून की व्याख्या

ग्रामीण आर्थिक उत्थान या समाज के कमजोर तबकों के कल्याण के लिए बने विधान को उदारता से उनके पक्ष में विवेचित किया गया है। सुप्रीम कोर्ट ने विभिन्न राज्यों द्वारा लागू किये गये भूमि सुधार कानूनों की वैद्यता को सही ठहराया है।

कई अवसरों पर ऐसा पाया गया है कि सामाजिक एवं आर्थिक विकास की दो एजेंसियां- विधायिका और न्यायपालिका अलग-अलग दिशाओं में अग्रसर होती हैं। इस तरह का एक महत्वपूर्ण मसला रहा है - संपत्ति का अधिकार। सुप्रीम कोर्ट द्वारा इसकी दी गई व्याख्या संसद को आर्थिक विकास के रास्ते में बाधा लगी। इस तरह, 1951 से 1964 तक कई संविधान संशोधन पारित हुए जिनके द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि संविधान के अनुच्छेद 31 द्वारा दिये गये संपत्ति का अधिकार कानून की नजर में न्यायसंगत नहीं था तथा विधायिका द्वारा तय की गई मुआवजे की राशि (मात्रा) ही अंतिम थी। उसके बाद भी कुछ और संशोधन किये गये जिनके द्वारा अनुच्छेद 31 के प्रयोग से कानून की कुछ श्रेणियों की रक्षा हो सके। उसी प्रकार, बंगलोर जलापूर्ति मामले में दी गई 'उद्योग' की 'परिभाषा' को विधायी प्रयासों द्वारा सीमाबद्ध करने की कोशिश की गई है। हालांकि, इस तरह के बहुत अधिक अवसर नहीं रहे हैं। कानूनी परिवर्तनों के पूर्ण प्रभाव अभी भी दिखने बाकी हैं। सामान्यत:, विधायिका एवं न्यायपालिका दोनों ने संविधान में निहित सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए परस्पर कानून को अधिनियमित, परिवर्तित और आकर दिया है। यद्यपि, जनमानस में अशिक्षा एवं अज्ञानता तथा सही एवं प्रभावी तंत्र के अभाव के कारण परिवर्तनों के प्रभावों को अनुभव किया जाना अभी बाकी है।

पाठगत प्रश्न 5.3

1. मजदूरों के हालात सुधारने के लिए बनाए गए किन्हीं तीन अधिनियमों या कानूनों का उल्लेख करें।
2. परिवार कानून के तहत समाज में महिलाओं की दशा सुधार के लिए दो अधिनियमों का उल्लेख करें।

5.4 वैकल्पिक विवाद निवारण या समाधान (ADR)

वैकल्पिक विवाद सुनवाई (एडीआर) (जिसे ऑस्ट्रेलिया जैसे अनेक देशों में अदालत के बाहर समाधान भी कहा जाता है), जिसमें विवाद के समाधान के लिए प्रतिपक्ष दलों को एक अनुबंध के तहत लाया जाता है। यह समझौते का एक सामूहिक प्रयास है, जिसमें प्रतिपक्ष किसी तीसरे पक्ष (मध्यस्थ) की सहायता से या उसके बिना विवाद का समाधान करता है। शुरू में इस तरह के समाधान का विरोध होने पर भी कुछ सालों से आम जनता और कानूनी व्यवसाय के बीच इसका स्वागत किया जा रहा है। सच तो यह है कि कई अदालत आजकल कुछ पक्षों के सहारे इस तरह की वैकल्पिक विवाद सुनवाई प्रक्रिया की जरूरत महसूस कर रही हैं।

5.4.1 मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996

मध्यस्थता

विवाद से पहले दोनों पक्ष अगर सहमत हो तो आपस में इस तरह के समझौते कर सकते हैं। अधनियम के भाग-7 के अनुसार यह अनुबंध लिखित तौर पर होना चाहिए। मध्यस्थ से भी हो सकता है, जिसमें कोई लिखित कारनामा दावे के ऐसे कथन का आदान-प्रदान और बचाव जिसमें एक पक्ष के द्वारा मध्यस्थ करार का भाव आरोपित किया जाता है और दूसरे के द्वारा नकारा नहीं जाता तो यह लिखित मध्यस्थ करार के रूप में मान्य है।

विवाद से संबंधित कोई भी पक्ष मध्यस्थ नियुक्त करने की प्रक्रिया शुरू कर सकता है और यदि दूसरा पक्ष सहयोग नहीं करता तो वह पक्ष उच्च न्यायाधीश के कार्यालय में मध्यस्थ नियुक्त करने का प्रस्ताव रख सकता है। एक पक्ष दो आधार पर मध्यस्थ नियुक्त करने की चुनौती दे सकता है-

'मध्यस्थ' की नियुक्ति को दो आधारों पर चुनौती दी जा सकती है-'मध्यस्थ' की निष्पक्षता में तर्कसंगत संदेह और मध्यस्थ करार के लिए आवश्यक मध्यस्थ की आवश्यक योग्यता में कमी। इसीलिए नियुक्त किया गया 'मध्यस्थ' या अनेक मध्यस्थों की सूची मध्यस्थ (अधिकरण) अदालत का निर्माण करता है।

कुछ अंतरिम उपायों के अलावा मध्यस्थता प्रक्रिया में न्यायिक मध्यस्थता के लिए बहुत ही कम गुंजाइश है। मध्यस्थ अधिकरण का अपने निजी अधिकार क्षेत्र पर अधिकार होता है। इसीलिए अगर कोई पक्ष मध्यस्थ अधिकरण के अधिकार को चुनौती देता है तो वह सिर्फ अधिकरण से पहले ऐसा कर सकता है। अगर अधिकरण अनुरोध को खारिज करता है तो पक्षकार क लिए यह कम मौका होता है, जब वह अधिकरण के फैसले के बाद अदालत के सामने प्रस्ताव रखें। धारा-34 निर्दिष्ट क्षेत्र प्रदान करता है, जिस पर कोई पक्ष असली अधिकार-क्षेत्र के मुख्य सिविल अदालत में अपील कर सकता है।

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 यू.एन.सी.आइ.टी.आर.ए.एल. मॉडल सुमेलित आदेश समायोजित के लिए अधिनियमित की गई है। भारतीय विधि प्रणाली को सरल और कारगर बनाने के लिए पारंपरिक दीवानी विधि, जिसे दंड विधान संहिता के रूप में जाना जाता है, 1908 में संशोधित की गई और धारा-89 प्रवर्तित की गई। दंड विधान संहिता के धारा 89(1) अदालत के बाहर विवाद के समाधान के लिए मौका देता है। जहां अदालत के को यह उचित लगता है,

वहां यह मध्यस्थता, सुलह, बीच-बचाव और न्यायिक समझौते के रूप में पक्षकारों के द्वारा अपनाया जाता है।

धीमी न्यायिक प्रक्रिया की वजह से भारत में वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र पर काफी दबाव है। मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के अंतर्गत विवाद निवारण एक पाश्चात्य दृष्टिकोण है, जबकि राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अंतर्गत बनी लोक अदालत प्रणाली अद्वितिय रूप से एक भारतीय दृष्टिकोण है।

सुलह समझौता

यह मध्यस्थता की तरह जटिल नहीं। इस प्रक्रिया में किसी पूर्व-निर्धारित करार की जरूरत नहीं। कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष को मध्यस्थ नियुक्त करने के लिए आग्रह कर सकता है। एक मध्यस्थ को तरजीह दी जाती है, लेकिन दो-तीन को भी अनुमति मिलती है। अनेक मध्यस्थ के मामले में, सभी का साथ में मिलकर काम करना जरूरी है। अगर कोई पक्ष मध्यस्थ के प्रस्ताव को ठुकराता है तो कोई समझौता नहीं होगा।

दोनों पक्ष लिखित रूप से अपना मत मध्यस्थ के सामने पेश करते हैं। हर पक्ष अपने मत की प्रति एक-दूसरे को भेजते हैं। मध्यस्थ आगे की कार्रवाई के लिए, दोनों पक्षों को मिलने के लिए भी कह सकते हैं या दोनों पक्षों के साथ लिखित या कथित रूप से संपर्क कर सकते हैं। यहां तक कि दोनों पक्ष समझौते के लिए अपना-अपना सुझाव मध्यस्थ के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं।

अगर मध्यस्थ को समझौते का कोई उम्मीद नजर आती है तो वह समझौते की शर्त तैयार करके दोनों पक्षों की स्वीकृति के लिए भेजता है। अगर दोनों पक्ष समझौते के दस्तावेज पर हस्ताक्षर करते हैं तो वह अंतिम फैसला होता है, जिसे दोनों पक्षों को मानना पड़ता है।

याद रखें कि अमेरिका में यह प्रक्रिया बीच-बचाव के समान है, जबकि भारत में बीच-बचाव मध्यस्थता से अलग है और विकल्प विवाद सुनवाई का अनौपचारिक माध्यम है।

5.4.2 लोक अदालत

लोक अदालत का अर्थ 'जन अदालत' है। हमारे देश में गांव के बुजुर्गों के माध्यम के विवादों के समाधान की एक लंबी परंपरा रही है। लोक अदालत की वर्तमान व्यवस्था उसी का विकसित रूप है और गांधीवादी सिद्धांत पर आधारित है। लोक अदालतें एक गैर-विरोधी प्रणाली है, जो राज्य प्राधिकरण, जिला प्राधिकरण, उच्चतम न्यायालय कानूनी सेवा समिति, उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति और तालुक कानूनी सेवा समिति द्वारा समय-समय पर इस तरह के अधिकार क्षेत्र में जहां उन्हें सही लगे, वहां व्यवस्था की जाती है। ये सारे मामले ज्यादातर सेवानिवृत न्यायाधीश, समाजसेवी और कानून व्यवस्था से संबंधित सदस्यों की अध्यक्षता में आयोजित की जाती है।

स्थायी मुकदमों में मुद्दई को निर्धारित कोर्ट फीस देनी पड़ती है, जबकि लोक अदालतों में कोई कोर्ट फीस देनी नहीं पड़ती और न ही कोई सख्त कार्यविधि की जरूरत है (जैसे भारतीय सिविल प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अंतर्गत कई प्रक्रिया पालन करना पड़ता है),

जिससे यह प्रक्रिया तेज होती है। पक्षकार न्यायाधीश के साथ सीधे संपर्क कर सकते हैं, जो स्थायी अदालतों में संभव नहीं।

अगर दोनों पक्ष राजी हों तो आम अदालतों में रुके हुए मामले लोक अदालतों में स्थानांतरित हो जाते है। कोई मामला अदालतों में तभी स्थानांतरित होता है, जब एक पक्ष अदालत में अर्जी करता है और दूसरे पक्ष को सुनने का मौका देने के बाद अदालत यह अनुभव करती है कि समझौते की कोई उम्मीद है।

लोक अदालतों में समझौते पर ध्यान दिया जाता है। अगर मामले का निपटारा समझौते तक नहीं पहुंचता तो वह वापस अदालत में चला जाता है। फिर भी, यदि समझौते तक बात पहुंचती है तो अधिनिर्णय बनता है, जिसे पक्षकारों पर न्यस्त किया जाता है। यह सिविल अदालत के फैसले के रूप में लागू किया जाता है। एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि अधिनिर्णय तय होने के बाद दोबारा अपील नहीं की जा सकती, क्योंकि यह आपसी सहमति का फैसला है। यहां तक कि भारतीय संविधान की अनुच्छेद 226 के अंतर्गत (जो वादकारी को यह अधिकार देता है कि उच्च न्यायालय से पहले समादेश-याचिका दायर कर सकता है)।

लोक अदालत की हर कार्रवाई न्यायिक कार्रवाई मानी जाती है और हर लोक अदालत सिविल अदालत माना जाता है।

जन-उपयोगी सेवाओं के लिए स्थायी लोक अदालतें

न्यायिक सेवा प्राधिकरण, 1987 के भाग-IV के अंतर्गत बनी लोक अदालत व्यवस्था में अगर कोई पक्ष समझौते के स्तर पर नहीं पहुंचता तो वह अनसुलझा मामला अदालत में वापस चला जाता है या पक्षों के समाधान के लिए अदालत की विधि अपनाने का निर्देश दिया जाता है। 1987 के अधिनियम संख्या 37/2002 को 11 जून, 2002 से लागू किया गया, जिसमें जन उपयोगी सेवा संबंधित विवादों का निपटारे की सुविधा प्रदान की गई, जैसे कि कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के यू./सेक्सन.22ए में परिभाषित की गई है कि अपनी पूर्व मुकदमेबाजी स्तर पर आम अदालतों का कार्य बोझ कुछ हद तक कम किया जा सका।

लोक अदालत में उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त अथवा सेवारत न्यायाधीश सभापति के रूप में और आमतौर पर एक वकील और समाजसेवी दो अन्य सदस्य के रूप में कार्य करते हैं। अगर यह मामला पहले से आम अदालतों में दाखिल किया गया है और यदि लोक अदालतों में विवाद का निपटारा हो जाता है तो जो फीस उसने पहले दाखिल की थी, उसे वापस मिलती है। लोक अदालतों द्वारा शिकायतों का आकलन करते समय प्रक्रियात्मक कानून और साक्ष्य अधिनियम का कड़ाई से पालन नहीं किया जाता।

लोक अदालत की मुख्य शर्त है कि विवाद में शामिल उभय पक्ष मामले के निपटारे के लिए राजी हो। विवाद को देखते हुए लोक अदालत का फैसला दोनों पक्षकारों पर न्यस्त होता है। उसका आदेश कानूनी प्रक्रिया के माध्यम से निष्पादन में सक्षम है।

पैसे के निपटारे के मामले में लोक अदालत बहुत प्रभावी हैं। विभाजन (अलगाव) के मुकदमें, वैवाहिक मामले, मुआवजे का निपटारा लोक अदालत में बहुत आसानी से होता है।

वादकारियों के लिए लोक अदालतें वरदान स्वरूप हैं, जहां उनके विवाद कम समय में और बिना पैसे के निपट जाते है।

5.4.3 जमीनी स्तर पर वैकल्पिक विवाद निवारण

अदालतों में सालों से पड़े आम आदमी के मामलों के निपटारे के लिए हमें भारत के हर राज्य के गांव में सालों से चली आ रही न्याय की विकेंद्रीकरण और न्याय-पंचायत का पुनः प्रयोग करने की आवश्यकता है। ग्रामीण स्तर पर इस तरह के विवादों का निवारण फोरम संविधान की धारा 39-क के तहत उल्लेख किया गया है।

न्याय पंचायत भारत की कुल जनसंख्या के 70 प्रतिशत लोगों का सशक्तिकरण करती है। क्षेत्रीय बोली के माध्यम से इसका संचालन होने के कारण कोई भाषागत प्रतिबंध दिखाई नहीं देता, जिससे विकल्प विवाद निवारण कार्य प्रणाली का एक आपसी समझौते का रास्ता नजर आता है। गांव के हर पंचायत में इस तरह के ग्रामीण अदालतों की स्थापना कम खर्च में आम आदमी के लिए सहज उपलब्ध है।

न्याय पंचायत बिल, 2006 के अनुसार पंचायत में पांच सदस्य होने चाहिए, जिसमें अन्य सदस्यों के अतिरिक्त एक महिला, एक अनुसूचित जाति, एक जनजाति, एक पिछड़ी जाति से क्रमावर्ती रूप से एक आरक्षित पद होता है (यदि हो), जो क्षेत्रीय चुनाव क्षेत्र के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। पिछड़ी जाति और महिला आरक्षण के द्वारा जाति के आधार पर उचित न्याय सुविधा प्रदान करने की व्यवस्था की जाती है।

इसके अतिरिक्त विवाद निवारण प्रक्रिया में पक्षपात प्रभाव और राजनीतिक समर्थन से बचने के लिए, पहले यह निश्चित कर लेना आवश्यक है कि कोई भी सदस्य किसी राष्ट्रीय या प्रादेशिक राजनीतिक दल से जुड़ा न हो। राज्य के लिए न्याय पंचायतों के उत्तरदायित्व को सुरक्षित रखने के लिए, प्रस्तावित विधायी ढांचे में पंचायत के द्वारा विवाद के समाधान के लिए लिखित प्रमाण तैयार करने और राज्य सरकार को इसकी रिपोर्ट प्रस्तुत करने की सुविधा प्राप्त है। ग्रामीण क्षेत्रों में 'ग्रामीण न्यायालय' की स्थापना प्रारंभिक स्तर पर विकल्प विवाद समाधान का दूसरा महत्वपूर्ण कदम है। माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकारें हर पंचायत में एक या अधिक ग्राम न्यायालय स्थापित करने की सोच रही हैं। हर 'ग्रामीण न्यायालय' एक न्यायाधिकारी के नेतृत्व में परिचालित होता है, जिसकी प्रथम श्रेणी के न्यायाधीश की कवायद हों और कुछ खास दीवानी और फौजदारी विवादों में विशिष्ट और मूल अधिकार क्षेत्रों से जुड़ा हो। इस विधेयक की मुख्य विशिष्टता है 'ग्राम न्यायलयों' के जरिए ग्रामीण स्तर पर 'अदालत अनुबंधित वैकल्पिक विवाद निवारण' लागू करना। दीवानी विवादों में न्यायाधिकारी को यह अधिकार या शक्ति भी है कि उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों के विषय में, वह कार्रवाई को स्थगित करके पक्षकारों के बीच आपसी सुलह करवा सकता है। इसके अतिरिक्त छोटे-मोटे विवाद जैसे- कृषिपयोगी जमीन को लेकर विवाद, खेती को लेकर विवाद, सामूहिक गोचर पर चराई को लेकर विवाद, नहर से पानी लेने के अधिकार को लेकर विवाद आदि ग्रामीण स्तर पर विकल्प विवाद निवारण प्रक्रिया के द्वारा लिए गए फैसले हैं। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम में जब पंचायती राज व्यवस्था को मान्यता दी, तब तक भी न्याय पंचायत की स्थापना के लिए कोई निर्दिष्ट उल्लेख नहीं था। हाल ही के

संशोधन के बाद कुछ राज्यों जैसे-बिहार, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल ने अपने नए पंचायती राज अधिनियम में 'न्याय पंचायत' की व्यवस्था रखी है।

अब तो ग्रामीण स्तर पर समाज सेवियों की नियुक्ति किए जाने की व्यवस्था है जिनकी आवश्यक योग्यता उच्च न्यायालय के द्वारा तय की गई है। अगर यह विधेयक लागू होता है तो भारत के आर्थिक और सामाजिक रूप से शोषित व्यक्तियों को सहज और सस्ते रूप में न्याय मिलेगी, न्याय की विकेंद्रीकरण हो सकती है और मामलों का बोझ भी कम होगा।

पाठगत प्रश्न 5.4

1. जनता को सस्ता और त्वरित न्याय प्रदान करने के लिए लोक अदालत की भूमिका की व्याख्या करें।
2. वै.वि.स. (ADR) का पूरा नाम बतलाइए।
3. सुलह-समझौता (Conciliation) क्या है?

आपने क्या सीखा

- इस अध्याय में हम समाज को एक क्रम में रखने में सहायक होने वाले विभिन्न प्रकार के सामान्य नियमों तथा मानकों से परिचित हुए। यह मूल रूप से धैर्य, रीति-रिवाज, नैतिक मूल्यों और जनमतों से बने हैं। कानून इस तरह का एक स्रोत है। आधुनिक समाज में आपसी मेल-मिलाप के लिए कानून की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।
- भारत में, समाज में सुधार लाने के लिए कानून महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। श्रम कानून, भमि-सुधार कानून, विवाह सम्बन्धी कानून, अभिभावककर्ता सम्बन्धी कानून, उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून, दत्तक-ग्रहण सम्बन्धी कानून, विशिष्ट आवश्यकताओं वाले व्यक्तियों के लिए कानून में समान अवसर प्रदान करना, बुजुर्ग व्यक्तियों से संबंधित कानून, आदि इसके कुछ उदाहरण हैं।
- अदालतों में सालों से पड़े मामलों की निपटारे के लिए कम खर्च पर त्वरित न्याय प्रदान करने हेतु आजकल विकल्प विवाद सुनवाई की व्यवस्था की गई है। भारत की संसद में माध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 पारित किया गया है और सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 में संशोधन किया गया है। जमीनी स्तर पर त्वरित न्याय प्रदान करने हेतु न्यायिक सेवा प्राधिकरण, 1987 पारित किया गया है जिसके अर्न्तगत लोक अदालतों की स्थापना की गई है। ग्रामीणों को उनके द्वार पर ही न्याय देने के लिए ग्राम-न्यायालय अधिनियम, 2009 पारित किया गया है।
- भारत के उच्चतम न्यायालय और न्याय के शीर्ष अदालतों ने न्यायिक के द्वारा उत्साहित होकर समाज में सामाजिक- अर्थनैतिक परिवर्तन लाने और महिलाओं और गरीबों की स्थिति में सुधार लाने के लिए अनेक नियमों का प्रवर्तन किया है।

पाठांत प्रश्न

1. समाज को नियन्त्रित करने के लिए विभिन्न प्रकार के 'मानकों' के महत्वों की चर्चा करें।
2. कानून के विविध स्रोतों की चर्चा करें।
3. समाज के नियंत्रण में कानून की भूमिका की चर्चा करें, साथ ही कानून और अन्य मानकों के बीच अंत:संबंध का विश्लेषण करें।
4. उदाहरण सहित सामाजिक सुधार में 'कानून' की भूमिका का मूल्यांकन करें।
5. विकल्प विवाद निवारण क्या है? त्वरित न्याय प्रदान करने हेतु इसकी भूमिका की चर्चा करें।
6. कैसे 'सामाजिक मानक' और 'नैतिक मानक' कानूनी मानकों को प्रभावित करते हैं?
7. विवाद के समाधान के लिए वैकल्पिक विवाद निवारण की विभिन्न प्रकारों कौन-कौन सी है?
8. निम्न पर संक्षेप नोट लिखिए

   (क) श्रम कानून (ख) परिवार कानून (ग) रीति-रिवाज का रूढ़ि (घ) लोक अदालत

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

5.1

1. साधारण शब्दों में समाज के द्वारा अपनाए गए 'मानक व्यवहार' को 'मानक' कहा जाता है।
2. सामाजिक व्यवहार के दो 'मानकों' के उदाहरण निम्न हैं-
   - विवाह संबंधित मानक
   - विरासत संबंधित मानक

5.2

1. सही
2. सही
3. सही

5.3

1. तीन अधिनियम निम्न हैं-

   (i) फैक्टरी अधिनियम, 1948

(ii) औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947

(iii) महिला क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923

2. दो अधिनियम निम्न हैं:

(क) हिंदू विवाह अधिनियम, 1955

(ख) हिंदू उत्तराधिकारी अधिनियम, 1986

5.4

1. लोक अदालतों में कार्याविधि कानून की कोई तकनीकी प्रणाली नहीं अपनाई जाती। यहाँ मामले या विवादों का निपटारा सर्वसम्मति से किया जाता है। यहाँ विवाद, आम या सामान्य अदालतों के मुकाबिले, कम समय और कम खर्च में निपट जाता है।
2. वैकल्पिक विवाद निवारण या समाधान
3. 'सुलह-समझौता' मध्यस्थता की अपेक्षा कम औपचारिक है। 'सुलह प्रक्रिया' में किसी पूर्व-निर्धारित करार की जरूरत नहीं होती। विवाद से सम्बन्धित कोई भी पक्ष एक 'मध्यस्थ' की नियुक्ति हेतु प्रार्थना कर सकता है। यदि कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष के 'मध्यस्थता' के प्रस्ताव को ठुकराता है तो कोई समझौता नहीं होता।